ओ३म्

स्वर्गप्राप्ति

जिस को

पूर्व राजोपदेशक विद्यमान उपदेशक

आर्य्यप्रतिनिधिसभा पंजाब

फर्रुखाबाद निवासी

पं० गिरिधारिलाल शास्त्री ने सर्वजनहिता र्थ

रचा

और

सामवेदभाष्यकार तथा सम्पादक वेदप्रकाश

पं० तुलसीराम स्वामी के प्रबन्ध से

स्वामियन्त्रालय मेरठ में

छपा कर प्रकाशित किया।

Printed at

THE SWAMI PRESS MEERUT

२४।१२।९८

प्रथम बार १३००

मूल्य =)

ओ३म्

ज्योतिष्टोमयाजी स्वर्गं समश्नुते ॥
य एवं विद्वानऽस्माच्छरीरभेदादूर्ध्व
उत्क्राम्यामुष्मिन् स्वर्गे लोके सर्वान्
कामानाप्त्वाऽमृतः समभवत् समभवत्॥
ऐ० उ० खं० ४ मं० ६ ॥

त्रिणाचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वां-
श्चिनुते नाचिकेतम् । स मृत्युपाशान् पुरतः
प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ॥
क० उ० १ व० १६ मं०

जोतिष्टोम यज्ञ करने वाला स्वर्ग को पाता है ॥ १ ॥
जो विद्वान् इस शरीर के भेद को जान कर पार हो जाता है वह इसी लोक में सब मनोरथों को पूरा कर के स्वर्ग को पाता और अमर हो जाता है और हो भी गये हैं ।२। जो पुरुष जन्म मरण और ब्रह्म इन तीनों के भेद को जान लेता है वह नचिकेता। सब मृत्यु के फन्दों को प्रथम ही से काट कर सब शोकों से बचकर स्वर्गलोक को भोगता है ॥

ओ३म्

स्वर्गप्राप्ति

जिस स्वर्ग की आशा में राजा हरिश्चन्द्र ने सत्य प्रतिज्ञा को धारण कर चक्रवर्ती राज्य को दान करके चाण्डाल की सेवा की, जिस स्वर्ग की आशा में उसकी रानी सामान्य स्त्रियों की दासी बनी, जिस स्वर्ग की आशा में राजा मयूरध्वज ने अपने प्राणप्रिय पुत्र का प्राण कोई चीज़ न समझा, जिस स्वर्ग की आशा में काशी करवट आदि तीर्थों पर हजारों नहीं बल्कि लाखों पुरुषों ने अपना सर्वस्व दान करके प्राणों को समर्पण कर दिया। जिस स्वर्ग की आशा में लाखों स्त्रिया पतियों के साथ चिता पर जल कर भस्म होगई। कहां तक गिनाया जाय लाखों नहीं बल्कि करोड़ों स्त्री और मनुष्य जिस स्वर्ग की आशा ही आशा में अपने प्राणों को न्योछावर कर चुके हैं वह स्वर्ग कहां है और किस तरह प्राप्त होता है॥

कोई स्वर्ग को चौथे आसमान पर बतलाते हैं, कोई सातवें आसमान पर बतलाते हैं, कोई शिवशिला पर, कोई श्रीपुर में, कोई गोलोक, कोई कहीं बतलाते हैं, कोई कही। पौराणिकों ने जहां तक समझा है उन्हों ने तिब्बत को ही स्वर्ग समझा है। इस के कई सबूत हैं, क्योंकि स्वर्ग का नाम संस्कृत में त्रिविष्टप है और उसी का भाषा में अपभ्रंश तिब्बत है। और महाभारत में कथा है कि

जब पाण्डवों का अन्त समय आया तब वें पाचों भाई छठी द्रौपदी ये छः स्वर्ग को चले और सीधे उत्तराखण्ड की ओर चलें। अर्थात् उत्तर में हिमालय पहाड़ है उस को चले, जब बर्फ़ में पहुंचे तब बर्फ़ के शीत में सहदेव सीभने (गलने) लगे, तब अर्जुन ने युधिष्ठिर से कहा कि महाराज सहदेव गड़बड़ाते हैं बर्फ़ में ऐंठे जाते हैं साथ नहीं लगते। यह सुन युधिष्ठिर ने कहा कि भाई सहदेव को अपनी विद्या का बड़ा भारी अभिमान था ये अपने बराबर विद्या में पृथ्वी भर पर किसी दूसरे को नहीं समझते थे। इसलिये ये अब साथ नहीं लगेंगे। सहदेव तो वहीं पर रह गये। आगे चल कर नकुल भी बर्फ़ में गड़बड़ाने लगे, तब अर्जुन ने फिर युधिष्ठिर से कहा कि महाराज अब तो नकुल भी गलने लगे, तब युधिष्ठिर ने फिर कहा कि भाई नकुल को अपनी कला, कौशल का बड़ा भारी अभिमान था। इसलिये अब ये भी साथ नहीं लगेंगे। नकुल भी वहीं रह गये। कुछ ही आगे चले कि द्रौपदी भी बर्फ़ में सीझने लगी, तब अर्जुन ने युधिष्ठिर से फिर कहा कि भाई अब तो द्रौपदी भी गड़बड़ाती है, यह सुन युधिष्ठिर ने कहा कि भाई द्रौपदी को भी अपने रूप का बड़ा भारी अभिमान था, ये अपने बराबर रूपवती संसार में किसी दूसरी स्त्री को नहीं समझती थीं। इस लिये अब ये भी साथ न लगेंगी, द्रौपदी भी वहीं पर

सीझ गईं। दूर नहीं चले थे कि भीमसेन भी लटपटाने लगे, तब अर्जुन ने युधिष्ठिर से फिर कहा कि महाराज अब तो भीमसेन भी साथ नहीं देते तब युधिष्ठिर ने फिर कहा कि भीमसेन भी जिस समय गदा हाथ में लेते थे उस समय यह कहते थे कि अब मैं पृथ्वी को लौट दूं तो क्या आश्चर्य। इसलिये अब ये भी साथ नहीं चलेंगे। भीमसेन भी वहीं पर रह गये, कुछ ही आगे और बढे थे कि अर्जुन खुद भी बर्फ में सीझने लगा और कहा कि महाराज अब तो मैं भी सीझने लगा, तब युधिष्ठिर ने कहा कि भाई तुम भी जिस समय गाण्डीव धनुष हाथ में लेते थे तब इन्द्र क्या चीज़ है यही समझते थे। इसलिये अब आगे नहीं पहुंचोगे। अस्तु सब के सब वहीं बर्फ में गल गये एक युधिष्ठिर ही पार स्वर्ग यानी तिब्बत में पहुंच गया एक पैरका अंगूठा युधिष्ठिर का भी गल गया था, इसलिये कि उम्र भर में सिर्फ एक झूठ युधिष्ठिर ने भी महाभारत के बीच में बोला था ॥

इस से भी सर्वथा यही सिद्ध होता है कि इन लोगों ने तिब्बत ही को स्वर्ग समझा है। और पौराणिक स्वर्ग में जो चिह्न (निशान) बताते हैं वे भी तिब्बत में पाये जाते है, अर्थात् १ (कल्प वृक्ष) जिस से जो मांगे सो मिलता है। (२ कामधेनु) जो मांगों सो देती है। तीसरा (हंस) जो कि दूध पानी को अलग करता है। और

चौथा (अमृत) जिस के पीने से मनुष्य अमर हो जाता है। ये चार चीज़ें स्वर्ग में बतलाते हैं इन में भी दो चीज़ें मौजूद पाई जाती हैं। अर्थात् वृक्ष तो एक ऐसी चीज़ है जो होती और १० बीस पचास या सौ वर्ष के भीतर नष्ट हो जाती है वह कल्पवृक्ष तो वहा है नहीं परन्तु कामधेनु, एक प्रकार की गौवें सदा मिलती हैं जिस को सुरगौ कहते हैं। (सुरगौ अर्थात् देवताओं की गौ) उसी की पूंछ के चमर बनते हैं। तीसरे हंस पक्षी भी वहा हैं। चौथे अमृत तो नहीं है परन्तु मानसरोवर झील का पानी बड़ा मीठा पाचन गुणकारी और तन्दुरुस्ती का बढ़ाने वाला है॥

इन बातों से सर्वथा सिद्ध है कि इन लोगों ने तिब्बत ही को स्वर्ग समझा है परन्तु विचारने की बात है कि क्या सिर्फ़ तिब्बत ही जाने के लिये राजा हरिश्चन्द्र ने अपनी वह दशा की, क्या सिर्फ़ तिब्बत ही में पहुंचने के लिये राजा मयूरध्वज ने पुत्र का महावियोग सहना स्वीकार किया, क्या सिर्फ़ तिब्बत ही में पहुंचने के लिये लाखों मनुष्यों ने प्राण छोड़ दिये और लाखों स्त्रियां पति के साथ जल कर भस्म होगईं। नहीं २ बड़ी भारी नासमझी है। तिब्बत में जाना तो क्या चीज़ है लोग उस से भी आगे चैना, रूस, योरोप, अमेरिका क्या बल्कि तमाम पृथ्वी की परिक्रमा कर आते हैं, अनेक मनुष्य

इस समय पर मौजूद हैं जो कि सम्पूर्ण पृथ्वी की परिक्रमा इधर से उधर तक कर आये हैं फिर तिब्बत क्या चीज़ है।

इस से विदित है कि सिर्फ़ तिब्बत ही में पहुंच जाना स्वर्ग नहीं है बल्कि स्वर्ग कोई और बहुत बड़ी चीज़ है वह स्वर्ग कहां है और क्या चीज़ है इस को मैं बताया चाहता हूं:—

प्रियवरो! उस स्वर्ग के लिये तुम को किसी और देश में जाने की ज़रूरत नहीं है। न वह किसी और जगह जाने पर मिल सक्ता है, बल्कि वह उसी जगह मिलता है जहां पर जिस देश में जिस ग्राम में और घर में आप पैदा हुए हैं, वहीं पर आप को स्वर्ग मिल सक्ता है। यदि मेरे बतलाये हुए नियमों पर आप चलें तो वह स्वर्ग ही नहीं बल्कि जो २ चीज़ें लोग स्वर्ग में बताते हैं कि कल्पवृक्ष, कामधेनु, हंस और अमृत ये भी आप को वहीं घर बैठे ही प्राप्त हो सक्ते हैं। बल्कि ये सब आप को प्रथम ईश्वर से प्राप्त ही हैं जो आप उन को ठीक २ काम में लावें तो। पाठकगण कहते होंगे कि यदि वे हमको प्राप्त ही हैं तो बताते क्यों नहीं। अच्छा अब मैं वे सब आप को बताये देता हूं परन्तु वे सब फलदायक तभी होंगे जब आप कुछ परिश्रम करके इन को ठीक २ नियमों के साथ पालेंगे तो॥

लोग कल्पवृक्ष की यह तारीफ़ बतलाते हैं कि यह

ऐसा वृक्ष नहीं है जो सिर्फ आम वा नीबू की तरह फलों ही को देवे बल्कि यह ऐसा वृक्ष है कि इस से जो चीज़ मागो वही देता है, फल मांगो फल, शकर मांगो शकर, सोना मागो सोना, चांदी मांगो चांदी, ग़रज़ जो मागो वही यह वृक्ष देता है ॥

और यह बात तो असम्भव सी मालूम होती है कि एक वृक्ष में से जो फल चाहो वह शकर, सोना, चांदी, सब गिरने लगे । और न ऐसा वृक्ष आज तक किसी ने देखा है, परन्तु मैं जिस कल्पवृक्ष को बतलाता हूं वह कल्पवृक्ष ज़रूर ही ऐसा है कि उस से जो कुछ मागो वह ज़रूर ही आप को देवेगा । पाठक जन कहते होंगे कि कल्पवृक्ष को बताते अब तक नहीं हैं कोरी बातें टपकाये जाते हैं, लीजिये अब बतलाता हूं सुनिये और समझिये वह कल्पवृक्ष आप का यह शरीर है इस शरीर को ऋग्वेद में भी वृक्ष के अलङ्कार से वर्णन किया है । जैसा कि—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षम् परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यन-श्नन्न्यो अभिचाकशीति ॥ ऋ० मं १ । सू० १६४ । मं० २० ॥

अर्थ—(द्वा) दो जीव और ब्रह्म (सुवर्णे) पक्षी हैं (सयुजा) इकट्ठे मिले हुए व्याप्य व्यापक भाव से सं-

युक्त (सखाया) परस्पर मित्रता युक्त सनातन और अनादि हैं (समानम्) एक (वृक्षम्) शरीर रूपी वृक्षपर (परिषस्वजाते) मिले हुए रहते हैं–(तयोः) उन दोनों में (अन्यः) एक (पिप्पलम्) अपने किये हुए कर्म रूपी फलों को (स्वादु) स्वादपूर्वक (अत्ति) खाता है (अन्यः) दूसरा ब्रह्म (अनश्नन्, विना खाये ही(अभिचाकशीति) बड़ा भारी बलवान् है ।।

इस मन्त्र में शरीर को वृक्ष के अलङ्कार से कहा है। और जीव तथा ब्रह्म को पक्षी के अलङ्कार से बताया है ऐसा ही गीता में कहा है कि–

ऊर्ध्व मूलमधः शाखा अश्वत्थं प्राहुरव्ययम्

(ऊर्ध्वं) ऊपर को (मूलम्) जड़ अर्थात् मुख है (अध.) नीचे को (शाखा) डाली अर्थात् हाथ पैर हैं ऐसा (अश्वत्थम्) अश्वा· प्राणाः तिष्ठन्ति यस्मिन्निति अश्वत्थः, प्राण रहैं जिस के भीतर उस को अश्वत्थ प्राणों वाला वृक्ष कहते हैं (अव्ययम्) नित्य मिलने वाला है अर्थात् यह शरीर रूपी वृक्ष विलक्षण है वह विलक्षणता यह है कि और वृक्षों में तो प्राण नहीं होते इस शरीर रूपी वृक्ष में तो प्राण हैं। दूसरी विलक्षणता यह है कि और वृक्षों की जड़ मुख नीचे को होता है परन्तु इस शरीर रूपी वृक्ष की जड़ (मुख) ऊपर को है । और तीसरी विलक्षणता यह है कि और वृक्षों की डालियां ऊपर को

होती हैं परन्तु इस शरीर रूपी वृक्ष की डाली (हाथ, पैर, उगली) सब नीचे को हैं । ऐसा यह शरीररूपी कल्पवृक्ष है । इसी प्रकार और कवियों ने भी शरीर को वृक्ष रूप से कहा है ।।

मर्त्यो वृक्षस्तस्य मूलं च सन्ध्या वेदः शाखा धर्मकर्माणि पत्रम् । तस्मात् मूलं यत्नतो रक्षणीयं छिन्ने मूले नैव शाखा न पत्रम् ।।

मनुष्य वृक्ष है जड़ इस की सन्ध्या है वेद शाखा हैं और धर्म कर्म ये पत्र हैं। इस लिये मूल जड़ की यत्न से रक्षा करनी चाहिये मूल न रहने पर न शाखा रहती हैं न पत्र रहते हैं ।।

जिस प्रकार आप चाहते हैं कि हम मामूली सेब अनार नाशपाती आदि के दरख्तों से फल खावें तो आरम्भ में आप उन वृक्षों को लगाते हैं यानी जड़ जमाते हैं और फिर पानी देते हैं फिर उन की शाखायें डालियों की हिफाजत करते हैं कि कोई इस की डालियों को तोड़ या खा न जावे । इसी तरह हिफाजत करते २ जब वह वृक्ष बड़ा हो जाता है तब आप को सेब अनार या नाशपाती के फल देता है—

इसी प्रकार जब आप इस शरीर रूपी कल्पवृक्ष की जड़ जमावेंगे, पानी देवेंगे, शाखाओं की रक्षा करेंगे। तब यह वृक्ष आप को कल्पवृक्ष की तरह अनन्त फल देगा ।

अब इस की जड़ जमानी क्या है सो मैं आप को बतलाता हूं, दोनो समय सायङ्काल और प्रातःकाल सन्ध्योपासन का करना, जिसके लिये वेदो में आज्ञा दी है कि-

अहरहः सन्ध्यामुपासीत । तस्मादहो रात्रस्य संयोगे ब्राह्मणः सन्ध्यामुपासीत । उद्यन्तमस्तं यान्तमादित्यमभिध्यायन् ॥ षड्विंशे ब्राह्मणे अ० ४ खं० ५ ॥

इस लिये दिन रात्रि के संयोग में सन्ध्योपासन ब्राह्मणादिक नित्य ही किया करें सूर्योदय में और अस्त समय में, इसी प्रकार मनु महाराज ने बड़े जोर से आज्ञा,दी है कि-

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् । स शूद्रवत् बहिः कार्यः सर्वस्माद्विजकर्मणः ॥ म० अ० २ श्लो० १०३

जो मनुष्य प्रातःकाल और सायङ्काल सन्ध्योपासन नहीं करता वह शूद्र है उस को ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के कर्मों से बाहर निकाल दो कर्मों का अधिकार नही है ॥

और विचार करने की भी बात है कि संसार में अपने साथ जो पुरुष थोड़ा भी अहसान करता है उस का बदला जबतक नहीं देदिया जाता तबतक उस के सामने आख नहीं होती बल्कि बदला देदेने पर भी उस का

अहसान हृदय से दूर नहीं होता। भला मनुष्यों के साथ तो यह बर्ताव और जिन परमात्मा ने हमारे ऊपर असंख्य उपकार किये हैं अगर उन को लिखा जावे तो एक बड़ी पुस्तक बन जावे जब भी समाप्त न हों उस परम पिताका दिन भर में सायङ्काल और प्रातःकाल दो समय स्मरण भी न करना क्या कृतघ्नता का पाप नहीं है?

भला विचारिये तो सही कि जिस परमात्मा ने जैसी इन्द्रियें दीं उन्हीं के अनुसार भोजनादिक भी दिये जैसे कि जिह्वा के भीतर स्वादास्वाद्य शक्ति है अर्थात् मीठे खाने का स्वभाव है। वैसा ही भोजन भी मीठा ही बनाया जैसा कि गेहूं, चावल, शक्कर, मीठे, फल आनन्द से खाते जाइये स्वाद लेते जाइये और पेट भर लीजिये। भला मीठा खाना तो जिह्वा को ही प्रिय है और कहीं कुनैन सरीखा कडुआ खाने को मिलता तो कैसी आफत पड़ती पेट भरना भी मुशकिल पड़जाता। देखिये उस की दया को कि जिधर को हमारा सब अङ्ग आगे झुकता हुआ बनाया उधर ही को पर और नेत्र बनाये कि सामने देखते जाओ और चलते जाओ अगर हमारे नेत्र तो आगे को होते और पैर पीछे को होते तो कैसी आफत पड़ती एक२ पग चलना कठिन पड़जाता पग२ पर ठोकर खा२ कर गिरते। परन्तु धन्य है उस जगदीश को कि सब कठिनताओं से बचादिया और आनन्द से संसार में निर्वाह कर सकें ऐसे सामान देदिये। कहा तक उस

पिता के धन्यवाद गाये जायं इस शरीर की एक २ रचना और कारीगरी को देखकर चित्त मोहित हो जाता है और इस छोटीसी समझ में नहीं आता कि किस प्रकार इस को बनाया है । सिर्फ एक दिमाग़ ही की कारीगरी को देखिये कि चारों वेद छः शास्त्र १८८ साइंस फ़लासफ़ी केमेस्ट्री अनेक विद्याओं को पढ़ जाइये अगर वे सब पुस्तकें इकट्ठी की जाय तो एक छकड़ा भर जायगा परन्तु न मालूम कि उन छकड़ा भर पुस्तकों की विद्या इस मुट्ठी भर दिमाग में किस सूक्ष्म स्वरूप से भर दी है समझ में नहीं आती । अभी स्मरण क्रिया ऋग्वेद की ऋचा याद आगई, अभी पर्दा पलटा कि न्याय का सूत्र याद आगया फिर चित्त लगा कि गीता का श्लोक याद आ गया, फिर विचारा तो साइन्स का वसूल याद आने लगा, कमेस्ट्री के क़ायदे दिखाई देने लगे । ये क्या जादू है कि ज़रा से दिमाग़ में यह सब भरा पड़ा है कुछ समझ में नहीं आता सच तो है कैसे समझ में आवे, उस अनन्त जगदीश्वर की रचना है मनुष्य विचारे की क्या ताक़त है उस को पूरा २ समझ ले । लाखों डाक्टर और करोड़ों फ़ासफर लगे रहें उस पिता की रचना दुर्ज्ञेय है ऐसे परमपरोपकारी पिता का स्मरण भी न करना महापाप है ।

इस के अतिरिक्त एक बहुत बड़ी बात यह भी है कि जो पुरुष चाहे कि मैं संसार में पापों से बचा रहूं तो उस के लिये सन्ध्योपासन से बढ़कर कोई दूसरा उपाय नहीं

है क्योंकि मनुष्य पाप तब करता है जब इस को किसी का भय नही रहता अर्थात् यह समझ लेता है कि अब मैं चाहीं सो करू मेरे कर्मों का देखने वाला कोई दूसरा नहीं है। ऐसी दशा में मनुष्य की पापो के लिये हिम्मत पड़ती है और जब कोई दूसरा देखने वाला सामने खड़ा होता है उस समय पापों के लिये हिम्मत नहीं होती। तो बस इसी प्रकार जो मनुष्य दोनों समय सन्ध्योपासन करता है उस को परमात्मा सर्वव्यापी सब जगह हरवक्त मौजूद दिखाई देता है और ईश्वर का भय लगा रहता है कि वह परमात्मा सब को भले बुरे कर्मों का फल देने वाला हम को देख रहा है। जो पाप करेंगे, सब का फल मिलेगा। बस फिर पापों की हिम्मत नहीं पड़ती। दोनों समय सन्ध्योपासन करना क्या परमात्मा से मिलना जो दोनों समय उस जगदीश से मिला करता है उस का काम कभी खराब नहीं होता, लोक में भी देखने में आता है कि जिस दफतर का अफसर हर रोज़ दफतर का काम देखता है वहां का काम सदैव अच्छा रहता है और जहां का काम अफसर बहुत दिनों तक नहीं देखता वहां का काम खराब हो जाता है। कारण यह कि फिर मनुष्य को किसी का भय नहीं रहता और भय के न रहने पर प्रमाद, आलस्य, निद्रा, काम, क्रोध, लोभ आदि दोष घेरने लगते हैं। और जब किसी का भय

रहता है तब मनुष्य चैतन्य रहता है, काम सावधानी से करता है, गलती नहीं करता। बस इसी प्रकार जो पुरुष दोनों समय सन्ध्योपासन करता है वह ईश्वर से डरता है, वह पाप नहीं करता है॥

एक महात्मा के पास दो मनुष्य चेले होने के लिये आये। महात्मा ने उन की परीक्षा के लिये दोनों को मिट्टी के दो खिलौने दिये और कहा कि जहा पर कोई न देखता हो उस जगह पर इन की गरदन तोड़ लाओ। उन में से एक मनुष्य ने तो महात्मा के मकान से निकल कर मकान के पीछे जाकर दीवार के पास एकान्त में चट उस खिलौने की गरदन तोड़ दो टुकड़े कर दिये। और चट आकर महात्मा के पास रख दिया। और दूसरा चारों तरफ़ दूर तक घूम आया परन्तु उस को कहीं मौका ही नही मिला, वह वैसा ही लौट आया और खिलौने को महात्मा के सामने वैसा ही रख दिया। महात्मा ने पहले से पूंछा कि क्यों जी तुम ने कहां पर एकान्त पाकर खिलौने को तोड़ा? उसने कहा महाराज! आप के मकान के पीछे कोई दूसरा मनुष्य नहीं था वहां पर मैं तोड़ लाया हूं। फिर दूसरे से पूंछा कि तुम्हें मौका क्यों नहीं मिला जो तुमने वैसा ही सजा खिलौना लाकर रख दिया? उसने जवाब दिया कि महाराज! मुझे कोई ऐसी जगह ही नहीं मिली, जहां कोई देखता न हो, जहा पर मैं जाता था वहीं पर मुझे यही दिखाई देता था

कि ईश्वर देख रहा है, फिर मैं कैसे तोड़ता। महात्मा इस दूसरे से बड़े प्रसन्न हुवे और इस को अपना शिष्य बनाया। इसी प्रकार जो मनुष्य ईश्वर को सब जगह देखता है वह सदा पापों से बचा रहता है। इसी का उपदेश सब मनुष्यों को यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के प्रथम मन्त्र में किया है कि:—

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ॥ यजुः अ० ४० मं० १ ॥

यह जो कुछ हम संसार में चर और अचर देख रहे हैं यह सब (ईशावास्यम्) परमात्मा से भरा हुआ है अर्थात् ईश्वर सब में व्यापक है। इस लिये ईश्वर को प्रत्यक्ष (हाजिर नाज़िर) समझो और किसी का हक धन वग़ैरह मत छूओ। अतः सब पापों से बचने के लिये सन्ध्योपासन करना परम धर्म है और यही इस शरीर रूपी कल्प वृक्ष की जड़ जमानी है ॥

अब इस वृक्ष में पानी देना क्या है उस को मैं बतलाता हूं—इसी सन्ध्योपासन में प्राणायाम की क्रिया बताई गई है उस का करना पानी देना है। इस शरीर में कई अरब कई करोड़ नस नाड़ी हैं जिन को वैद्यक शास्त्र में बताया है। डाक्टरों ने भी नस और नाड़ियों की संख्या की है परन्तु इस को ठीक पता नहीं लगता। क्योंकि वे मुर्दों का तजर्बा जिन्दों पर अमल में लाते हैं। डाक्टर

लोग शरीर की नाड़ियों को उस वक्त ढूंढते हैं जिस वक्त जीव शरीर से पृथक् होजाता है और जीव के निकलते ही लाखों नाड़ीं ऐसी हैं कि जो पानी होकर खून में मिल जाती हैं। इन की पहुंचान डाक्टरों को कभी हो ही नहीं सक्ती। जिस समय मनुष्य प्राणायाम करता है तो प्राण वायु शरीर में भीतर चक्कर बाधता है और एक २ नस नाड़ी के भीतर घुसकर गदगी हवा को निकाल कर भीतर से शुद्ध कर देता है और उसी समय यह जीवात्मा अपने भीतर स्वरूप में परमात्मा का ध्यान करता है और उस अनन्तगम्भीर चश्मे से आनन्द और प्रकाश लेता है। वह परमात्मा सम्बन्धी तेज, प्रकाश, ज्ञान और आनन्द एक नाड़ी के भीतर प्रकाशित होजाता है। जिस तरह वृक्ष की जड़ में दिये हुए पानी को उस की जड़ से रगें ऊपर को वृक्ष की एक २ शाखा, टहनी, पत्ते की रग २ में पहुंचा देतीं हैं। इसी प्रकार परमात्मा सम्बन्धी प्रकाश भी मनुष्य की एक २ रग में पहुंचकर मनुष्य को प्रकाशवान्, तेजवान्, बलवान्, ज्ञानवान्, रूपवान्, और गुणवान् बना देती है। यही विधिपूर्वक प्राणायाम करना इस शरीर रूपी कल्पवृक्ष में जल देना है॥

अब मैं अपने इस कल्पवृक्ष की शाखायें बतलाता हूं-जिस प्रकार वृक्ष बढ़ कर दो शाखें (गुद्दे)होजाया करते हैं, इसी प्रकार इस शरीर के दो गुद्दे अर्थात् दो

भुजायें गुद्दे शाखें हैं। उन में पहली शाखा अर्थात् दाहिनी भुजा में जो पांच अंगली हैं ये ही पांच छोटी २ शाखा हैं। इस दाहिनी भुजा रूपी शाखा का नाम "यम" है जिस को महाराज पतञ्जलि ने अपने योगशास्त्र में कहा है॥

तत्राहिंसासत्याऽस्तेयब्रह्मचर्य्यापरिग्रहायमाः

योगसाधनपाद सूत्र ३

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यह पांच यम हैं (अहिंसा) हिंसनम् हिंसा न हिंसा अहिंसा—प्राण वियोगानुकूलव्यापारो हिंसा=किसी के प्राणों को दुःख पहुंचाने का नाम हिंसा है। महाभाष्य में लिखा है कि गुरुः शिष्याय चपेटिकां ददाति=गुरु शिष्य के मुख में चपेटिका—तमाचा मारता है। तो क्या यह भी हिंसा हुई। या, राजा चौराय दण्डं ददाति=राजा चोर को दण्ड देता है क्या यह भी हिंसा हुई। नहीं २ इन दोनों में हिंसा एक भी नहीं क्योंकि गुरु शिष्य को किसी स्वार्थ के लिये नहीं मारता किन्तु इसलिये मारता है कि किसी प्रकार इस की मूर्खता छूट जावे और इस में गुण और विद्या बढ़ जावें। इसी प्रकार राजा भी चोर को दण्ड इस लिये देता है कि इस की बुराई छूट जावे और यह किसी को दुःख न देवे। असल हिंसा इस का नाम है कि किसी जीव को अपने स्वार्थ के लिये सताना दुःख पहुंचाना जैसा कि—

प्राणा यथात्मनोऽभीष्टा भूतानामपि ते तथा।

आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः ॥१॥

जिस प्रकार मनुष्यों को अपने प्राण प्यारे हैं उसी प्रकार सब प्राणियों को भी अपने २ प्राण प्यारे हैं। इसी लिये सज्जन लोग आत्मौपम्येन=अपनी ही उपमा से अर्थात् जैसा दुःख सुख अपना है ऐसा ही दूसरे का समझ कर सब जीवों के ऊपर दया करते रहते हैं॥

किसी जीव को किसी दशा में न सताना और किसी के साथ वैर न करना, इस का नाम अहिंसा है। यह पहली शाखा है॥

दूसरी शाखा (सत्यम्) सत्य है अर्थात् सत्य ही का मानना सत्य ही कहना सत्य है जैसाकि:—

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम्।
मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कार्यमन्य दुरात्मनाम्

मन में जो एक बात, वाणी पर भी वही एक बात, और कर्त्तव्य यानी करतूत में भी वही एक बात, यह सज्जनों का लक्षण है और, मन में और, वाणी पर और, करतूत पर और, यह दुष्टों का लक्षण है॥

बस जो मन में है वही कहना और वही करना और सर्वथा अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहना इस का नाम सत्य है यह वृक्ष की दूसरी शाखा है॥

"तीसरी शाखा (अस्तेयम्) अस्तेय है"—अर्थात् चोरी न करना, चोरी क्या कहाती है:—

यत्कर्म कृत्वा कुर्वंश्च करिष्यंश्चापिलज्जति।
स्तेयं तद्धि विज्ञेयमस्तेयं ततः पृथक्॥

जिस कर्म के करने के पेश्तर या करने के समय या करने के पश्चात् मनुष्य को भय, लज्जा और आत्मा में घबड़ाहट पैदा हो, समझ लीजिये कि यही कर्म चोरी का है, और जिस कर्म के करने में भय लज्जा न हो और आत्मा को प्रसन्नता रहे वही कर्म चोरीरहित है उसी को करना और चोरी को छोड़ना इसी का नाम अस्तेय है। यह तीसरी शाखा है॥

"चौथी शाखा (ब्रह्मचर्य्यम्) ब्रह्मचर्य है" अर्थात् जितेन्द्रिय होकर वीर्य की रक्षा करके शरीर में बल वीर्य पुरुषार्थ और तेज का बढ़ाना, शरीर को सदा नीरोग रखना, शारीरिक बल शक्ति बढ़ाने के लिये और शरीर को नीरोग रखने के लिये ब्रह्मचर्य्य से बढ़कर कोई दूसरा उपाय नहीं है। इस का कारण यह है कि जो कुछ अन्न खाया जाता है, वह अन्न पेट में पहुंचता है, तब उस में पित्त जो कि एक प्रकार का तेजाब सा तीक्ष्ण होता है वह उस भोजन में मिल जाता है और मिल कर उस भोजन को हल कर देता अर्थात् पचा देता है। जब वह पच-जाता है तब उस के दो हिस्से हो जाते हैं। एक तो रस जो कि शरीर ही में रहता है दूसरा विष्ठामूत्र जो कि बाहर निकल जाता है। वह रस जो कि भोजन का सार निकल कर पेट में रहा है उस का रुधिर बनता है और रुधिर का मास

और मांस से मेदा, मेदा से मज्जा, मज्जा से हड्डी, हड्डी से सार, सार से वीर्य, और वीर्य फिरपित्त बनता है। यदि अधिकवीर्य हो तो अधिक पित्त बनता है और कम वीर्य हो तो कम पित्त बनता है, जो लोग वीर्य का नाश करते हैं उन का वीर्य कमज़ोर हो जाता है, वीर्य के कमज़ोर होने से पित्त कमज़ोर हो जाता है, जब पित्त कमज़ोर हो जाता है तब खाया हुआ भोजन पचता नहीं मन्दाग्नि होजाती है बस एक मन्दाग्नि तमाम बीमारियों की जड़ है यही सुश्रुत में लिखा है। इसी लिये शरीर की रक्षा के लिये वीर्य रक्षा के बराबर कोई दूसरा उपाय नहीं है॥

ऐ मनुष्यो! इस वीर्य को नाश मत करो, यह बड़ी भारी अजब चीज़ परमात्मा ने तुम को दी है, इस को सिवाय १० सन्तान उत्पन्न करने के अधिक खर्च मत करो, इसी के रहने से शरीर रहता है, इसी के निकल जाने से शरीर का नाश होजाता है, इस का प्रकाश शरीर के भीतर लैम्प की तरह है, लैम्प के गुल होजाने से मकान में बिलकुल अंधेरा होजाता, हथेली नहीं दिखाई देती। इसी प्रकार इस वीर्य के निकल जाने से शरीर में अन्धकार छाजाता है, इस वीर्य के निकलने से नेत्रों की रोशनी निकलजाती है, इस वीर्य के निकलने से कानों की सुनने की ताकत निकल जाती है, इस वीर्य के निकल जाने से दिमाग़ की ताकत निकल जाती है, इस वीर्य के निकल जाने से हाथ पैर घुटनों की ताकत निकल जाती है, शरीर बिलकुल निर्बल होजाता है सो अलग, और अनेक बीमारी होजाती हैं सो अलग, और महापाप

मनुष्य के शिर चढ़ता है सो अलग, वह महापाप यह है कि एक बार वीर्य का वृथा खोना एक जीव की हत्या मनुष्य के ।...: पर चढ़ती है। क्योंकि परमात्मा ने सब चीज़ें मनुष्य को सार्थक दी हैं । जिस वीर्य को एक बार वृथा खोया है, यदि वही वीर्य अपनी स्त्री में ऋतुकाल के समय काम में लाया जाता तो उस से एक उत्तम सन्तान पैदा होती, उस को वृथा नाश करना एक सन्तान की हत्या शिर पर लेते हैं । जो मनुष्य जितने बार वीर्य को वृथा खोते हैं उतनी ही हत्यायें उन के शिर पर चढ़ती हैं । हा! हा! कैसा घोर अन्धकार छा रहा है कि लोग अपना बीज दूसरों के खेतों में डाल कर वृथा नाश कर रहे हैं। भला कोई भी किसान ऐसा मूर्ख होगा जो अपना तुच्छ भी अनाज का बीज किसी दूसरे के खेत में जाकर डाले। परन्तु मनुष्य ऐसे मूर्ख हैं कि सन्तानों का बीज दूसरों के खेतों में डाल कर वृथा खोते हैं और मूर्ख बनते हैं । मनु महाराज लिखते हैं:-

तत्प्राज्ञेन विनीतेन ज्ञानविज्ञानवेदिना ।
आयुष्कामेन वप्तव्यं न जातु परयोषिति ।४१।

बुद्धिमान् सुशिक्षित ज्ञानी विज्ञानी और आयु को चाहने वाला मनुष्य इस वीर्य को दूसरे की स्त्री में न बोवे । अर्थात् जो मनुष्य बुद्धि चाहे कि मुझ को बुद्धि, सुशिक्षा, ज्ञान, विज्ञान और बड़ी आयु मिले वह अपने वीर्य को किसी प्रकार नष्ट न करे ॥

किसी महात्मा ने कहा है कि:—

वरं क्लैव्यं पुंसां न च परकलत्राभिगमनम् ।

अर्थात् मनुष्य का (क्लीव) नपुंसक होजाना अच्छा है परन्तु परस्त्री के पास जाना किसी दशा में अच्छा नहीं है। इत्यादि कारणों से वीर्य नष्ट करना महामूर्खता है ॥

बस वीर्य को किसी प्रकार वृथा नष्ट न कर के उस की सर्वथा रक्षा करके बलवान् होकर रहना तथा और इन्द्रियों को भी सर्वथा जीते रहना, क्योंकि इन्द्रियों को विना जीते मनुष्य किसी काम का नहीं होता है, हमेशा पापी आलसी, निकम्मा और रोगी रहता है और वह चाहो जो कुछ कर्म करे वे सब निष्फल जाते हैं। जैसा कि धर्म-शास्त्र में लिखा है:—

वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च ।
न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ॥

मनु० २ । ९७

जो मनुष्य दुष्टाचारी है, जितेन्द्रिय नहीं है, वह चाहो चारों वेदों को पढ़ जावे, चाहो सब का त्याग कर देवे, चाहो अनेक यज्ञ करे, चाहो कितने ही नियमों को पाले, चाहो कितने ही तप करे, उस के वे सब व्यर्थ हैं। और कभी सिद्धि नहीं होती ॥

बल्कि जो पुरुष जितेन्द्रिय नहीं है उस को धिक्कार है जैसा कि—

धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते बलेन किं यश्च रिपून्न बाधते। श्रुतेन किं यो न च धर्ममाचरेत् किमात्मना यो न जितेन्द्रियो भवेत् ॥

अर्थ—उस धन के होने से क्या फल जो न देता है और न खाता है, उस बल के होने से क्या फल हुआ जो शत्रुओं (दुश्मनों) को नष्ट नहीं करता, उस शास्त्र के पढ़ने से क्या फल हुआ जो धर्म का आचरण नहीं किया, और उस शरीर के धारण करने से क्या फल हुआ जो कि जितेन्द्रिय नहीं रहता है ॥

अर्थात् इस श्लोक में चौथा पाद साफ कहा है कि "किमात्मना यो न जितेन्द्रियो भवेत्" अर्थात् उस शरीर का धिक्कार २ कि जो जितेन्द्रिय नहीं है ॥

इस लिये सब इन्द्रियों को जीत कर ब्रह्मचारी रहना यह इस वृक्ष की चौथी शाखा है ॥

" पांचवी शाखा (अपरिग्रहः) "—अपरिग्रह है। अर्थात् अपने परिश्रम का हक़ का लेना और उसी से अपना निर्वाह करना और लोभ लालच में फंस कर पापी न बनना "लोभः प्रतिष्ठापापस्य" लोभ पाप की जड़ है ॥

लोभात्कामःप्रभवति लोभात् क्रोधोभिजायते।
लोभात् भवति सम्मोहः लोभः पापस्य कारणम् ॥

अर्थ—लोभ ही से काम होता है, लोभ ही से क्रोध होता है, लोभ ही से मोह होता है। बस लोभ ही पाप की जड़ है॥ महाराज भर्तृहरि जी लिखते हैं कि:—

लोभश्चेद्गुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः। सौजन्यं यदि किंगुणैः स्वमहिमा यद्यस्ति किं मण्डनैः॥ सत्यञ्चेत्तपसा च किं शुचि मनो यद्यस्ति तीर्थेन किं। सद्विद्या यदि किं धनैरपयशो यद्यस्ति किं मृत्युना॥ भर्तृ०

अगर मनुष्यों में लोभ है तो और अवगुणों की क्या जरूरत, अगर मनुष्य में चुगली करने की आदत है तो और पापों की क्या जरूरत है, अगर मनुष्य में सज्जनता है तो और गुणो की क्या जरूरत, अगर मनुष्य का यश संसार में है तो फेशन बनाने की क्या ज़रूरत, अगर मनुष्य में सत्य है तो तप करने की क्या ज़रूरत, अगर मनुष्य का मन पवित्र है तो तीर्थ जाने की क्या जरूरत, अगर मनुष्य में विद्या है तो धन की क्या ज़रूरत, और अगर दुनियां में बुरे कर्मों से मनुष्य का अपयश है तो मौत की क्या ज़रूरत ॥

जब मैं संसार की ओर देखता हूं तो तमाम संसार इस लोभ में फसा हुआ इस तृष्णा रूपी नदी की धार में बहता, डूबता, उछलता, गोते खाता चला जाता है। चाहिये था कि इस तृष्णा रूपी नदी के पार पहुंचें सो नहीं करते बल्कि इस नदी में गोते खा रहे हैं। इस तृष्णा को शास्त्रों ने वैतरणी नदी के नाम से कहा है "तृष्णावैतरणीनदी" तमाम उम्र उस के भीतर पड़ा रहे परन्तु इस का पार नहीं मिलता। एक मनुष्य की तृष्णा का गड्ढा

इतना बड़ा है कि उस को तीनों लोक देदिये जावें, अर्थात् तीनों लोकों का राजा बना दिया जावे, फिर भी उस की तृष्णा पूरी नहीं होसकती है। कहिये फिर यह मनुष्य एक जीवन में कितना धन कमा सकता है। महाराज भर्तृहरि जिन्होंने तमाम राज्य छोड़ दिया वे इस तृष्णा की स्तुति करते हैं:—

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किंचित् फलम्। त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला॥ भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशङ्कया काकवत्। तृष्णे दुर्मति पापकर्मणि रतेर्नाद्यापि सन्तुष्यसि॥

मैं ने अनेक नीचे ऊंचे कठिन देश घूम डाले परन्तु कुछ भी फल न पाया, फिर मैं ने अपनी जाति और कुल का अभिमान छोड़ कर लोगों की सेवा और खुशामद की वह भी निष्फल गई, फिर मैंने मान छोड़ अपमान सह कर दूसरों के घर जा जा कर कौवे की तरह अपना पेट भरा लेकिन हे तृष्णा! हे दुष्ट पापकर्मों में फसाने वाली! तू अब भी शान्त नहीं होती। फिर वे ही महाराज आगे चल कर कहते हैं कि—

उत्खातं निधिशङ्कया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन सन्तोषिताः। मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः

श्मशाने निशा प्राप्तः काणवराटकोपि न मया तृष्णेधुना मुञ्च माम् ॥

मैंने दफीना (भंडा) की तृष्णा आशा से तमाम पृथिवी खुदवा डाली और रसायन बनने की तृष्णा से पहाड़ फूंक डाले, रत्नों के मिलने की तृष्णा से समुद्रों को इधर से उधर तक तैर गया, इनाम मिलने की तृष्णा में बड़े २ राजाओं को अनेक यत्नों से सन्तुष्ट प्रसन्न किया, पिशाच यानी जिन्न को सिद्ध करने के लिये वर्षों की रातें श्मशान (मरघटों) में काट डालीं। लेकिन आज तक मुझ को कानी कौड़िया भी नहीं मिली। ऐ तृष्णा ! अब तो कृपा कर मुझे छोड़। भला भर्तृहरि सरीखे ज्ञानी तो जिस तृष्णा को इतनी कठिन बता रहे हैं फिर ये साधारण मनुष्य बिचारा क्या चीज़ है, जो इस तृष्णा के भीतर फंस फिर इस को पार करसके। इस लिये इस के पार होने का बड़ा उपाय यही है कि अपने हक पर कमर बाधी जाये। इसी प्रकार लोभ तृष्णा से बचना और अपने हक पर कमर बांधना उसी में अपना निर्वाह करना इस का नाम अपरिग्रह है। यह इस कल्पवृक्ष की पाचवीं शाखा है ॥

एक तरफ की पांच उगली यानी पांच शाखायें समाप्त हुईं। अब दूसरी तरफ का गुद्दा और शाखायें कही जाती हैं–दूसरे गुद्दे का नाम (नियम) है जिस को पतञ्जलि ऋषि ने योगशास्त्र में लिखा है:–

शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि
नियमाः ॥ योगसाधन पाद ३२ सू०

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान ये नियम हैं ॥

इन में पहिली छोटी शाखा (शौच) शौच है अर्थात् केवल शरीर ही को साबुन से मल २ कर धो लेना शौच नहीं है बल्कि शरीर, मन, आत्मा और बुद्धि इन चारों चीजों को शुद्ध रखने का नाम शौच है जैसा कि मनुमहाराज ने बताया है कि :—

अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति मनः सत्येन शुध्यति
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति
॥ मनु० ॥ ५ ॥ १०९

जल से शरीर शुद्ध होता है । परन्तु मन सत्य से शुद्ध होता है, विद्या और तप से आत्मा शुद्ध होता है, बुद्धि ज्ञान से शुद्ध होती है । इन चारों चीजों से चारों के शुद्ध करने और सदैव रखने का नाम शौच है । और एक दूसरे प्रकार की बहुत ही बड़ी शुचि मनुमहाराज बतलाते हैं वह यह है कि :—

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम् । यो ऽर्थेशुचिः स शुचिः न मृद्वारिशुचिः शुचिः ॥

सब शौचों में धन सम्बन्धी शौच सब से बढ़ कर है यहां तक कि धन सम्बन्धी शौच अर्थात् अपने हक का

धन लेना दूसरे के हक की कौडी जहर के बराबर समझना यही पूरा शौच पवित्रता है मिट्टी और पानी से किया हुआ कोई बढ़िया पवित्रता नही है ।।

यहां सब भाति की पवित्रत को शौच कहते हैं यही इस वृक्ष की दूसरे गुद्दे की दूसरी शाखा है ।।

"तीसरी शाखा (सन्तोषः) सन्तोष है" इस का अर्थ कुछ अपरिग्रह में कह चुके हैं शेष यह है—सन्तोष का अर्थ "यदृच्छालाभसन्तुष्ट" अपने पुरुषार्थ के लाभ में सन्तुष्ट अर्थात् प्रसन्न रहना। बस सुख की जड़ सन्तोष है विशेष अर्थ इतना है कि जो कुछ पाप आज तक मनुष्य से हुए सो हुए उन के लिये पश्चात्ताप व प्रायश्चित्त करना और आगे के लिये दृढ सङ्कल्प करना कि अब ऐसा पाप मैं कभी नहीं करूंगा। और सदैव उस दिन से अच्छे कर्म करते रहना, इस का नाम सन्तोष है। बस सन्तोष ही सब सुखों की जड़ है (सन्तोषः परमं सुखम्) सन्तोष परम सुख है। एक महात्मा ने कहा है कि:—

यत्सुखं शान्तचित्तानां सन्तोषामृतपायिनाम्
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम् ॥

जो सुख शान्त चित्त सन्तोष रूपी अमृत को पीने वालों को है, वह सुख धन के लोभी इधर से उधर दौडने भागने वाले मनुष्यों को कहां है। महाराज भर्तृहरि कहते हैं कि:—

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्त्वं दुकूलैः समइह

परिवेशो निर्विशेषो विशेषः ॥ स हि भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः ॥

हम दरख्त के बकलों ही में प्रसन्न हैं, तुम बढ़िया रेशमी कपड़ों में भी उतने ही प्रसन्न हो, हमारी तुम्हारी प्रसन्नता बराबर है। अगर कहो कि तुम दरिद्री हो तो दरिद्री वह है जिस की तृष्णा लम्बी चौड़ी है। जब मन को सन्तोष कर लिया फिर कौन धनवान् और कौन दरिद्री, सब एक ही हैं ॥

गोधन गजधन वजिधन, और रत्नधन खानि ।
जब आवै सन्तोष धन, सब धन धूरि समान॥

अर्थात् किसी पुरुष ने कहा कि (गोधन) अर्थात् गौ, भैंस, बैल, ये धन, या (गजधन) हाथियों का होना (वाजिधन) बड़े २ बढ़िया घोड़ों का होना और बड़े २ कीमती रत्नों का खज़ाना ये धन कितना ही बढ़ता चला जावे परन्तु तृप्ति नहीं होती। और जहां सन्तोष रूपी धन आया कि उस समय सब धन मिट्टी के समान है। इस लिये:-

सन्तोषः परमोलाभः सन्तोषः परमं सुखम् ।
सन्तोषः परमं चायुः सन्तोषः परमं धनम् ॥

(अर्थ) सन्तोष बड़ा भारी लाभ है, सन्तोष बड़ा भारी सुख है, सन्तोष बड़ा अच्छा जीवन है, और सन्तोष

बड़ा भारी धन है। इस लिये सर्वथा लोभ और तृष्णा को छोड़ना और अपने परिश्रम से उपार्जित धन में सदैव आनन्दित रहना और पुरुषार्थ खूब करना। परन्तु लाभ और हानि में सुख दु:ख न मानना, इसी का नाम सन्तोष है। यह इस वृक्ष की दूसरी शाखा है ॥

तीसरी शाखा (तपः) तप है जिस का अर्थ महाराज पतञ्जलि जी लिखते हैं कि:—

स्वधर्मानुष्ठाने तपः ? ॥ योग० ॥

अपने धर्म का पालन करना अर्थात् अपना जीवन धर्म के साथ बिताना इस का नाम तप है। कितना ही कष्ट पड़े परन्तु धर्म को न छोड़ना ॥

न जातु कामान्न भयान्न लोभा

द्धर्मंत्यजेज्जीवितस्यापि हेतोः ॥

अर्थात् धर्म को काम के वश में होकर, या लोभ लालच के वश में होकर, न भय के वश में होकर, बल्कि जीवन लोभ के लालच में आकर के भी धर्म को न छोड़े क्यों कि जीवन तो बार २ मिलता है परन्तु गया हुआ धर्म फिर नहीं मिलता। एक महात्मा ने लिखा है कि:—

वृत्तं यत्नेन संरक्षेत् वित्तमायाति याति च।

अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ॥१॥

(वृत्त) अर्थात् धर्म की रक्षा यत्न से करे (वित्तम्) धन तो आता है और चला जाता है, जो पुरुष धन से क्षीण

है वह नीच नहीं परन्तु जो धर्म से रहित है वह सब से रहित है। इस लिये धर्म की सदैव रक्षा की जाय। महाराज भर्तृहरि जी लिखते हैं कि न्याय से एक पग भर भी मत हटो जैसा कि:—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीःसमाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ॥
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥१॥

अर्थ—नीति जानने वाले (पालीसीबाज) लोग चाहे निन्दा करे चाहे अच्छा बतावें, धन चाहे आवे चाहो सब चला जावे, मौत चाहो इसी समय आजावे चाहो एक युग भर जीता रहे। परन्तु धीर वीर लोग न्याय से हट कर पैर नहीं रखते हैं ॥

इसलिये न्याय अर्थात् धर्म से तिल भर भी हट कर पैर न रखना। सदैव धर्म मार्ग ही पर चल कर जीवन जन्म बिताना मनुष्य जन्म की सफलता है। और जो लोग मनुष्य जन्म पाकर धर्म नहीं करते वे लोग महा बदकिस्मत हैं और अपना जीवन वृथा खो रहे हैं। जैसा है कि महाराज भर्तृहरि जीने कहा है कि:—

स्थाल्यां वैदूर्यमय्यां पचति च लशुनं चन्दनैरिन्धनाद्यैः सौवर्णैर्लांगलाग्रैर्लिखति च वसुधामर्कमूलस्य हेतोः। छित्वा कर्पूरखण्डान्

वृतिमिह कुरुते कोद्रवाणां समन्तात् । प्राप्येमां कर्मभूमिं चरति च मनुजो यस्तयो मेन्दभाग्यः ॥

जो मनुष्य इस कर्मभूमि (जैसा करो वैसा फल पाओ) पृथिवी पर आकर तप (धर्म) नहीं करता वह महामन्द भाग्य यानी बदकिस्मत है, और वह अपने जीवन को इस प्रकार बुरी तरह काम में लारहा है कि जैसे किसी को विदूरमणि की स्याली यानी बटलोई मिल जावे तो वह उस को चूल्हे पर चढ़ा कर नीचे चन्दन की लकड़ी जला कर उस बटलोई के भीतर महाबदबू से भरा लहसुन पकाता है। बस जैसा यह काम उस मनुष्य का गन्दा है। उस प्रकार मनुष्य का जीवन भी गन्दा और शोक के लायक है कि जो मनुष्य जीवन पाकर धर्म नहीं करता है ॥

या कोई मनुष्य हल में सोने की फाल लगा कर जमीन को जोते इस लिये कि इस में आक की जड़े बोंऊगा। बस यह काम उस का जैसा अज्ञान और मूर्खता और बद्किस्मती से भरा हुआ है। इस प्रकार उस मनुष्य का जीवन भी मूर्खता और बद्किस्मती से भरा हुआ है कि जो मनुष्य जीवन पाकर धर्म नहीं करता या यों कहियेगा कि—

जैसे कोई मनुष्य कपूर के दरख्तों को काट कर कोदों के खेत में हिफ़ाजत के लिये बिखाड़े (घेरी) लगावे जैसा यह कर्म बदकिस्मती से भरा हुआ है इसी प्रकार उस मनुष्य का जीवन भी बदकिस्मती और मूर्खता से भरा है कि जो मनुष्य जन्म पाकर फिर धर्म नहीं करता। इस

लिये उस धर्म को जो कि दुनियां की सब चीजों के छूट जाने शरीर के भी छूट जाने पर जीव के साथ जाता है उस धर्म को नित्य के लिये साथी बनाना योग्य है। मनु ने भी लिखा है कि:-

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेप्यनुयाति यः। शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यद्धि गच्छति ॥ १ ॥

अर्थ-एक धर्म ही मनुष्य का ऐसा मित्र है जो कि मरने पर भी मनुष्य के साथ जाता है और ये सब शरीर ही के साथ नाश होजाता है। और भी :-

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारी गृहद्वारि जनाः श्मशाने। देहश्चितायां परलोकमार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

अर्थ। यह धन सब ज़मीन में गड़ा या बक्सों में बन्द रहजाता है। पशु-यानी जानवर हाथी, घोड़े वग़ैरः सब घुड़साल में बधे रहजाते हैं, प्राणप्यारी स्त्रीभी घर के द्वार पर रोती खड़ी रहजाती है। सब कुटुम्बी भाई, बेटा, पोता, वग़ैरः श्मशान में रहजाते हैं और यह देह (शरीर) चिता पर जल कर भस्म होजाता है। सिर्फ़ अकेला जीव धर्म ही को साथ लेकर जाता है ॥

इस लिये इस असार संसार में धर्म ही का करना बड़ा भारी काम है इसी को तप कहते हैं। यह इस शरीर रूपी कल्पवृक्ष की तीसरी शाखा है ॥

"चौथी शाखा (स्वाध्याय) है" अर्थात् जो परमात्मा ने सृष्टि की आदि में ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद ये चारों वेद मनुष्य मात्र के ज्ञान के लिये दिये हैं इनको पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना और इनके अनुसार खुद चलना और औरों को चलाना मनुष्य का मुख्य कर्म है जिन वेदों के पढ़ने के लिये महाराज पतञ्जलि जी महाभाष्य में आज्ञा देते है कि—

ब्राह्मणेन निष्कारणं षडङ्गोवेदोऽध्येयोज्ञेयश्च

अर्थात् ब्राह्मणों को बिना कारण (बिना लालच वगैरह के स्वाभाविक धर्म समझ कर) वेदो को छः अङ्गों के सहित पढना और जानना चाहिये। इसी प्रकार मनु महाराज कहते हैं कि:—

योनधीत्यद्विजोवेदमन्यत्र कुरुते श्रमम् ।
सजीवन्नेव शूद्रत्वमाशु गच्छति सान्वयः ॥

जो द्विज वेदों को न पढके और २ कामों में परिश्रम करता है वह जीता ही सहित कुटुम्ब के शूद्र होजाता है ॥

वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ।

वेदों का पढना ब्राह्मण का धर्म है , इस लिये जिन वेदों के न पढने से ब्राह्मण शूद्र होजाता है, जिन वेदोके न पढने से मनुष्य अपने धर्म कर्मों को नही जान सकता, जिन वेदों को न पढने से मनुष्य पापों में शामिल

होजाता है, जिन वेदों को न पढने से मनुष्य पशुओं के बरावर है, उन वेदों को नित्य पढ़ना मनुष्यमात्र का धर्म है

चातुर्वर्ण्यं त्रयोलोकाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्
भूतं भव्यं भविष्यं च सर्वं वेदात्प्रसिध्यति ॥
मनु १२ । ९७ ॥

चारों वर्ण, तीनो लोक, चारों आश्रम, भूत वर्त्तमान और भविष्यत् इन सब की विद्या वेदो में है ।

शब्दःस्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धश्च पञ्चमः ।
वेदादेव प्रसूयन्ते प्रसूतिगुणकर्मणः ॥९८॥

अर्थ—शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, इन सब ज्ञेय पदार्थों का ज्ञान वेदों ही से होता है और जो वेद के एक २ पदार्थ की उत्पत्ति गुण और कर्म से भरे हुवे हैं ।

बिभर्ति सर्वभूतानि वेदशास्त्रं सनातनम् ।
तस्मादेतत्परं मन्ये यज्जन्तोरस्य साधनम् ॥

यह जो सनातन वेदशास्त्र है यह सब विद्याओं के दान से सम्पूर्ण प्राणियों को धारण और सब सुखों को प्राप्त कराता है । इसी लिये हम लोग सर्वदा इन को उत्तम मानें ॥

सेनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च ।
सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्रविदर्हति ॥१॥

सेना का प्रबन्ध, राज्य, ठीक २ दण्ड का देना, सर्व

लोक का स्वामित्व अर्थात् चक्रवर्ती राज्य, इन सब को वेद शास्त्र का जानने वाला ही कर सकता है ।।

इस लिये सब ज्ञानों की जड़ वेद शास्त्रों को पढ़ना मनुष्य का परम कर्त्तव्य है । यही इस वृक्ष की चौथी शाखा है ॥

"पांचवीं शाखा (ईश्वरप्रणिधान) ईश्वर का बल भरोसा" अर्थात् सब कामों में ईश्वर को सहायक रखना और उस के बल भरोसे पर सब काम करना, जैसा कि एक महात्मा ने कहा है:—

यो मे गर्भगतस्यादौ पूर्वं कल्पितवान् पयः ।
शेषवृत्तिविधाने हि स किं सुप्तोगतोऽथवा ॥१॥

जिस परमात्माने मेरे गर्भ में पहुंचने से पहले ही पहले माता की छाती में अमृत सरीखा दूध रच दिया था, ऐसी दशा में जिस ने भोजन दिया था अब बाकी उम्र में भोजन देने के लिये क्या वह सो गया है ? या कहीं चला गया है ? नहीं २ मनुष्यो ! वह परम पिता सर्वत्रमौजूद है, उस पर बल भरोसा रक्खो, कोई दुःखी न रहोगे, वह पिता बड़ा ही दयालु सब को यथायोग्य पुरुषार्थ के अनुसार फल देता है, किसी का कर्म या पुरुषार्थ जो कि धर्म के साथ किया गया है फल देता है । इसी भरोसे व विश्वास पर ऋषि महर्षि व धर्मात्मा लोग अपना जीवन परोपकार के लिये देदेते हैं। और उस का बदला कुछ भी किसी से नहीं चाहते । जैसा कि—

पिबन्ति नद्यः स्वयमेव नाम्भः स्वयं न खादन्ति फलानि वृक्षाः। धाराधरो वर्षति नात्महेतोः परोपकाराय सतां विभूतयः ॥१॥

नदियां खुद ही अपना पानी नहीं पीती, वृक्ष खुद अपने फलों को नहीं खाते, मेघ अपने लिये नहीं बरसते इस से यह सिद्ध हुआ कि सत्पुरुषों का ऐश्वर्य परोपकार ही के लिये होता है ।।

ये सत्पुरुष अपना जीवन परोपकार के लिये ईश्वर के विश्वास ही के ऊपर करते हैं और जगदीश सदैव सब का हित ही सोचते और करते हैं। जो कुछ बुराई और दुःख होता है यह सब हमारे दुष्कर्मों का फल है, दुःख पड़ने पर अपने पापों का फल न मान कर जो लोग परमेश्वर को दूषण देने लगते हैं वे महापापी, और महा अज्ञानी हैं ।।

एक मनुष्य जो कि बहुत काल से परदेश में थोड़ीसी तनख्वाह पर नौकर था। बहुत दिनों के बाद अपने मकान को चला, मार्ग में एक शहर पड़ा, सोचा कि यहां से कुछ स्त्री और लड़कों के लिये लेलेवें बहुत दिनो के बाद घर को जाते हैं, वे लोग कहेंगे कि हमारे लिये क्या २ लाये, परन्तु रुपये थोड़े ही हैं। इस लिये ऐसी ही सस्ते मोल की कुछ चीज़ लेलेवें। यह सोचकर स्त्री के लिये तो एक कच्चे रङ्ग की चुनरी जो कि देखने में बड़ी ही चटक मालूम

पहनती थी, ली । और लड़कों के लिये कुछ मिठाई लेकर दोनों को और चूनरी को सिर पर रख लिया और चल दिये । जब मील दो मील शहर से निकल गये, तब एक तरफ़ से बादल उठा और पानी बड़े ही ज़ोर से बरसा उन के सब कपड़े भीग गये । और वह कच्चे रङ्ग की चुनरी के भीग जाने पर उस का रङ्ग चारों तरफ़ बहने लगा और मिठाई भी पिघल कर सब कपड़ों पर बह उठी । तब तो आप बड़े ही नाराज हुए और ईश्वर को हज़ारों उलटी सीधी सुनाने लगे, कि देखो ईश्वर बड़ा ही अन्यायकारी है इस वर्षों के बाद अपने घर को जाते थे, स्त्री को चुनरी और लड़कों को मिठाई लिये जाते थे, वह भी ईश्वर से न सहा गया, ऐसा पानी बरसाया कि वह सब नाश कर दिया । इसी तरह बुड़ बुड़ा रहे थे कि इतने में दो डाकू लुटेरे बन्दूक चढ़ाये इन की तरफ़ निशाना लगाये दौड़ते हुए इन को लूटने के लिये सामने से आ रहे थे, कि पानी की कीचड़ में एक डाकू का पैर फिसल गया, गिरते ही उस की टांग टूट गई, दूसरे डाकू ने क्रोध में आकर कि इस से लूट तो कुछ भी न पाया और मेरे भाई की टांग टूट गई । अब इस रास्तागीर को जान ही से मार डालूं । यह सोच कर बन्दूक इस के ऊपर छोड़ी, इत्तिफ़ाक़ से टोपी और बारूद को पानी बर्षने की सर्दी लग गई थी, इस से टोपी ने आग न दी । तब दूसरी टोपी चढ़ाई उस को भी सर्दी खागई थी, एक भी न चली, उस मुसाफ़िर का कुछ भी न बिगड़ा, तब

वह मुसाफ़िर होश में आया, और बड़ा ही पछताया कि हा नाथ! हा जगदीश! हा परमपिता! मैं बड़ा ही मूर्ख अज्ञानी हूं। आज यदि पानी न बरसता, तो किसी प्रकार मेरे प्राण न बचते, मैं यहीं मारा जाता। जिस पानी के बरसने से मैं ने आप को अनेक दोष दिये थे, वही पानी मेरे लिये अमृत होगया। उसी ने मेरी जान बचाई, नहीं तो आज कोई उपाय मेरे बचने का न था॥

इस प्रकार जो लोग दुःख पड़ने पर अपनी बुराई न समझ कर ईश्वर को दोष देने लगते हैं, वे महापापी हैं, परमपिता तो सब के लिये सदैव हित ही करते हैं। उस जगदीश का सदा सर्वदा बल भरोसा रखना, और परोपकारादि धर्मों को नित्य विश्वास के साथ करते रहना, बल्कि अपने आत्मा को सर्वथा परमात्मा के ही समर्पण कर देना। इसी का नाम ईश्वरप्रणिधान है। यह इस वृक्ष की पांचवीं शाखा समाप्त हुई॥

जिस प्रकार मैंने इस शरीर रूपी कल्पवृक्ष के नियम बतलाये अर्थात् दोनों समय सन्ध्योपासन से तो जड़ जमाना और प्राणायाम से पानी देना और १-अहिंसा, २-सत्य, ३-अस्तेय, ४-ब्रह्मचर्य, ५-अपरिग्रह, ६-शौच, ७-सन्तोष, ८-तप, ९-स्वाध्याय, और १०-ईश्वरप्रणिधान ये दश शाखायें हैं। इन सब नियमों के साथ जब इस शरीररूपी कल्पवृक्ष का पालन किया जावगा तब यह वृक्ष ऐसा तैयार होगा कि आप इस से जो फल मांगेंगे सो यह आप को देवेगा।

इस में कोई सन्देह नहीं है। संसार सम्बन्धी जितने सुख हैं उन को और परलोक सम्बन्धी जो पदार्थ हैं उन सब को यह कल्पवृक्ष आप को दे सकता है, इस में कोई सन्देह नहीं है। औरलोगों ने जो फल कल्पवृक्ष से मिलने बताये थे तो चाहे असम्भव हों परन्तु इस शरीर रूपी कल्पवृक्ष से दुनिया में और परलोक में ऐसी कोई चीज़ नहीं है जो दुर्लभ हो। यह सब आप को दे सकेगा।

अब दूसरा पदार्थ स्वर्ग का लोग कामधेनु बताते हैं अर्थात् कामधेनु एक गौ है वह जो चाहो जो मागो सोई देती, दूध, मागो दूध, सोना मांगो सोना, चांदी मागो चांदी, शकर मांगो शकर, जो मांगो वही पदार्थ वह गौ देती है। और यह बात तो असम्भव भी मालूम पड़ती है कि गौ सोना चांदी उगले, क्योंकि गौ का काम दूध देना है और शक्कर सोना चादी आदि वस्तुओं को वह नहीं उगल सकती है। परन्तु हां जिस कामधेनु को मैं बताता हूं वह कामधेनु इतनी बड़ी शक्ति वाली है कि उस से जो कुछ चाहो वही पदार्थ आप को दे सक्ती है परन्तु शर्त यह है कि आप उस गौ को अपने घर पर बांधें लौ। अब वह कामधेनु गौ क्या है उस को मैं बताता हूं। सुनिये वह गौ (विद्या है) जो विद्या कि पशुओं से मनुष्य बना देती है, जो विद्या कि अज्ञानी को ज्ञानवान् बना देती है, जो विद्या कि वहशियों की औलाद को राजा बना देती है जो विद्या अन्धकार को प्रकाश कर देती है, जिस विद्या की तारीफ़ प्रशंसा को लिखते २

बड़े २ विद्वानों की लेखनी थक गई। जिस विद्या की प्रशंसा में लोगों ने पुस्तकों की पुस्तकें बनादीं, परन्तु तब भी प्रशंसा पूरी न हुई महाराज भर्तृहरि लिखते हैं:—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम्
विद्याभोगकरीयशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।
विद्याबन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतम् । विद्या राजसु पूजिता न च धनं विद्याविहीनः पशुः ।१

विद्या मनुष्य का बड़ा भारी स्वरूप है क्योंकि एक मनुष्य चाहो काला या चेचकरू हो या ऐसा बदशकल हो कि जिस के देखने को जी नहीं चाहता हो, परन्तु जिस समय यह मालूम होगा कि यह पुरुष तो बड़ा भारी विद्वान् है उसी समय उस की तरफ़ से चित्त की घृणा दूर होजावेगी, और चित्त उस से अपने आप ही प्रेम करने लगेगा। बल्कि वह बदशकल मनुष्य उस सुन्दर खूबसूरत मनुष्य से जो कि विद्या नहीं पढ़ा है कई गुणा सुन्दर है मनुष्य कैसा ही सुन्दर हो और विद्या नहीं पढ़ा है तो उस की ठीक वही दशा है कि:—

रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवाः। विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः ॥१॥

जो मनुष्य बड़ा रूपवान् है और बहुत अच्छा जवान है और बड़ा कुलीन भी है परन्तु बिना विद्या के शोभा नहीं पाता जैसा कि बिना सुगन्ध का दुहर का फूल ॥

बस इसी प्रकार " विद्यारूप कुरूपाणां, विद्या कुरूपों का रूप है और विद्या खाली रूप ही नहीं बल्कि "प्रछन्नगुप्त धनम् " बड़ा छिपा हुआ धन है। कोई कैसा ही थोड़ा धन हो चाहो जवाहरात ही क्यों न हो उस को मनुष्य किसी तरह छिपा कर अपने साथ ले चले और मार्ग में कहीं चोर लुटेरे मिल जावें तो वे एक २ रग ढूंढकर उस धन को ज़रूर ही निकाल लेवेंगे, परन्तु यदि विद्यारूपी धन तुम्हारे पास कितना ही हो उस को लिये चाहो जहां फिरिये एक नहीं हज़ारों चोर पीछे लगे रहें परन्तु कुछ भी नहीं लेसकते है। इतना ही नहीं बल्कि विद्या बड़े २ भोगों को देने वाली है, मनुष्य कैसा ही दरिद्री हो अगर उस में विद्या सच्ची है तो उस को संसार में किसी सुख की कमी नहीं रहती है। और विद्या बड़े भारी यश को देने वाली है, यश के लिये लोग दुनियां में बड़े २ उपाय करते हैं, कोई कुआ खुदाते, कोई बाग़ लगवाते, कोई मकान व इमारत बनवाते कोई पुल बनवाते, कोई कुछ कोई कुछ, लोग अनेक उपाय करते हैं परन्तु इन सब उपायों से मनुष्य का नाम (यशः) हज़ार हद्द दो हजार वर्ष चलता है। बस आगे को नहीं चलता परन्तु विद्या से मनुष्य का नाम लाखों वर्ष चलता है। बल्कि सृष्टि से लेकर प्रलय तक मनुष्य का नाम संसार में रखने वाला यदि कोई पदार्थ है तो विद्या है। हमारे वृद्ध ऋषि महर्षि गोतम, कणाद, पतञ्जलि, कपिल, जैमिनि, व्यास आदि ऋषियों ने जो सब

संसार को अकिञ्चित् (नाचीज़) समझ कर विद्या ही का विचार मुख्य समझा इसी से आज तक उन का नाम उन के षट् शास्त्रों से चला आता है। और जब तक संसार है बराबर चला जायगा। एक कणाद ही को देखियेगा कि यह "कणानत्तीति कणादः, अर्थात् कण यानी टूटे हुए अन्न को इकट्ठा करके खाते थे, उन का विचार यह था कि पूरा २ अन्न खाने से उस का बीज मारा जाता, इसी लिये टूटे अन्न से शरीर पोषण करके योगाभ्यास से जो समय बचता था, उस को विद्याभ्यास में लगाते थे। और अपनी विद्या का नमूना एक "वैशेषिक" दर्शन बना गये, जिस को पढ़ने से अनेक अज्ञानियों का अन्धकार दूर होता है। और जब तक संसार है उन का यश नाम अटल बना रहेगा। और विद्या बड़े २ सुखों को देने वाली है, अर्थात् विद्या के बल से लोग राज्य तक पा लेते हैं, विद्या गुरु का भी गुरु है, अर्थात् एक बीस वर्ष का लड़का जो कि विद्वान् है वह उस बुड्ढे का जो कि १०० सौ वर्ष का है परन्तु कुछ पढ़ा नहीं है, उस का वह लड़का गुरु है। जैसा कि मनु महाराज ने कहा है.—

न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बन्धुभिः ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योनूचानः सनोमहान् ॥

ऋषियों ने यह धर्म से निर्णय किया है कि न तो मनुष्य वर्षों से बड़ा होता है, न बाल सफ़ेद होने से न धन से, न कुटुम्ब से, बल्कि जो विद्वान् है वही हमारा

बड़ा है । इस से विद्या गुरुओं का भी गुरु है ॥

परदेश में जाने पर विद्या भाई का काम देती है। आप अकेले कहीं परदेश में चले जाइये अगर आप के पास विद्या है तो अनेक लोग आप के भाई कुटुम्बी बल्कि नौकर तक का काम देने को तैय्यार हैं-विद्या बड़ा भारी भाग्य है, कैसा ही बदकिस्मत मनुष्य क्यों न हो अगर उस ने सच्ची विद्या पढी है तो वह संसार में भूखा या दुःखी कभी नहीं रहेगा-और विद्या की प्रत्यक्ष परीक्षा यह है कि राजदरबारों में जाकर देखिये कि बड़े २ धनवान् तो पैरों में नीचे बैठाले जाते हैं और विद्वान् जावे तो वह राजा के बराबर बैठाला जाता है और बड़ी प्रतिष्ठा और मान किया जाता है, धन को वहां कोई नहीं पूंछता । इसी लिये विद्या धन सब धनों में उत्तम है यह विद्या जिन के पास नहीं है वे पशु के बराबर हैं । इसी प्रकार और भी कहा है:-

केयूरा न विभूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः
न स्नानंन विलेपनं नकुसुमं नालङ्कृतामूर्द्धजाः
वाण्येकासमलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते।
क्षीयन्ते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम्॥

केयूर मणि का पहन लेना मनुष्य को कुछ शोभा नहीं देता और चन्द्रमा सरीखे उज्ज्वल हारों का पहन लेना भी कुछ शोभा नहीं देता, कितना ही साबुन से स्नान करना, चन्दन का लगाना, फूलों का पहनना या बालो

का सजाना यह कुछ शोभा नहीं देता है । क्योंकिः-
केवल एक विद्या वाणी जो कि संस्कृत धारण की जाती है वही पूरी २ शोभा मनुष्य को देती है। क्योंकि और सब भूषण (गहने) क्षीण होजाते हैं सिर्फ़ वाणी ही का गहना सदा के लिये नाश रहित शोभायमान रहता है इसी प्रकार एक ऋषि ने कहा है कि विद्या का धन सब धनों में प्रधान है जैसा किः-

न चौरचौर्यं न नृपेण दण्डयं न बन्धुभागं न करोति भारम् । व्यये कृते वर्द्धत एव नित्यम् विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ॥

न इस को चोर चुरा सकता है, न राजादण्ड में ले सकता है, न भाई वग़ैरह हिस्सा में बटा सकते हैं, न लेजाने में कुछ भार बोझ होता है, न ख़र्च करने से घटता है बल्कि जितना ख़र्च करो उतना ही दिनों दिन बढ़ता है, इस लिये विद्या धन सब धनों में प्रधान उत्तम है और मनुष्य को बड़े २ दुर्लभ पदार्थों को देने वाला है ।

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते ।
कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय दुःखम् ।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम् ।
किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या ॥१॥

विद्या माता की तरह रक्षा करती है, पिता की स-

रह मनुष्य को भलाई में लगाती है, स्त्री के भांति सब दुःखों को दूर करके आनन्द देती है, चित्त को प्रसन्न रखती है, और संसार भर की सब दिशाओं में कीर्त्ति को फैला देती है। बस संसार में कोई ऐसी चीज़ नहीं है कि जिस को "कल्पवृक्ष" की तरह विद्या प्राप्त न करा देवे, बल्कि विद्या के सामने और सब धन तुच्छ हैं जैसा कि:—

क्षांतिश्चेत् कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोस्तिचेद्देहिनाम्। ज्ञातिश्चेदनलेन किं यदि सुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम्॥ किं सर्पैर्यदि दुर्जना किमुधनैर्विद्यानवद्या यदि व्रीडा चेत् किमु भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम्॥

अगर मनुष्य में क्षमा शक्ति है तो कवच पहरने की क्या ज़रूरत, यदि क्रोध है तो दुश्मनों की क्या ज़रूरत, जाति के लोग हैं तो अपने आप चिता में आग लगाने की क्या ज़रूरत, यदि सच्चे मित्र हैं तो दिव्य औषधियों की क्या ज़रूरत, अगर दुर्जन हैं तो सर्पों की क्या ज़रूरत, अगर सच्ची विद्या है तो धन की क्या ज़रूरत, अगर लज्जा है तो गहने की क्या ज़रूरत, यदि उत्तम विद्या कविता है तो राज्य की क्या ज़रूरत, बस यह विद्या रूपी रत्न जिन के पास नहीं है वे लोग मनुष्य नहीं। जैसा है कि—

येशां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः । ते मर्त्यलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥

जिन लोगो के पास न विद्या है, न तप है, न दान है, न ज्ञान है, न शील है, न गुण है, न धर्म है, वे लोग इस संसार में सिर्फ बोझ ही उठाने वाले हैं और मनुष्य के आकार वाले मृग पशु हैं । वास्तव में जिन मनुष्यों में इन गुणों में से एक भी नहीं है उन से ससार का बिगाड़ के सिवाय उपकार क्या हो सकता है और जो लोग अपनी सन्तान को विद्या नहीं पढ़ाते वे लोग बिलकुल अज्ञानी और अपनी सन्तान के शत्रु हैं। जैसा कि:-

माताशत्रुः पितावैरी येन बालो न पाठितः ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बकयथा ॥१॥

वह माता तो शत्रु और पिता बड़ा भारी दुश्मन है कि जिस ने अपने पुत्र को नहीं पढ़ाया है, क्यो कि वह पुत्र सभा के भीतर बैठकर ऐसा मालूम होता है जैसा कि हसो में कौवा मालूम पड़ता है । महाशोक का विषय है कि आज कल के चन्द धनवान् यह कह देते हैं कि अजी हमारे पास तो धन बहुत है हम पढ़ा कर क्या करेंगे क्या हमें नौकरी कराना है। हा हा ये लोग यही जानते हैं कि विद्या नौकरी के लिये पढ़ी जाती है, यह

नहीं जानते कि बिना विद्या पढ़े मनुष्य पशु के बराबर है। जिस प्रकार पशु धन के आनन्द को नहीं जानता बन्दर के गले में मोतियों का हार डाल दो तो वह उस का मर्म क्या जानेगा। बल्कि तोड़ कर फेंक देगा। बस इसी तरह जिन पुरुषों के पास धन नहीं है वे लोग भी उस धन का मर्म, उस धन का आनन्द उस धन का ठीक २ इस्तेमाल नहीं जानते हैं, और उस धन को व्यर्थ बुरे कर्मों में खोकर पापी बनते हैं। जिन लोगों के पास धन है और विद्या नहीं है वे लोग बिना ज्ञान के इन्द्रियों को नहीं जीत सके और आगा पीछा भी नहीं विचार सके, घट बुरी सोहबतों में पड़ जाते हैं, हजारों आदमी इस समय पर ऐसे मौजूद हैं कि हमेशा इसी दाव घात में रहते हैं कि किसी दौलतमन्द के लड़के को बुरे ढंगों में फास लेवें और दो चार बुरी आदतों का उस को आदी बना देवें, बस उन्ही आदतों के ढङ्ग से आदी हो-जाने पर उस को बिलकुल अपने काबू में कर लेते हैं, और थोड़े ही दिनों में उस का सब धन खैंच कर उस को भिखारी बना देते हैं। इसी प्रकार हजारों दौलतमन्दों के घर बुरी सुहबतों ने तबाह कर दिये हैं, इन बुरी सोहबतों से बिना विद्या के मनुष्य किसी हालत में बच नहीं सका और बुरी आदतों में फंस अपना धन यौवन सब गमा देते हैं और संसार में महा अपयश हो जाता है फिर मनुष्य बुरी दशा से संसार में दुःख भोग २ कर म-

रता है। जिस के पास विद्या है वह बुरे मनुष्यों की चाल में कभी नहीं आता है और न बुरे कर्मों में फंसता है न फजूल खर्चों में धन उड़ाता है बल्कि उस धन को बड़े अच्छे तौर पर काम में लाता है और दिन २ बढ़ाता है। बल्कि उस के ज़रिये से आनन्द में अपनी आयु व्यतीत करता है, और संसार में यश पाता है। कदाचित् किसी तरह उस के पास से धन निकल भी जाय तो वह फिर पैदा कर कमा सक्ता है और दुनिया में आनन्द से रह सक्ता है और मूर्ख के पास जब धन नहीं रहता तब उस को दुर्दशा से मरने के सिवाय और कुछ नहीं बनता ॥

इस लिये मनुष्यों को अपनी सन्तान को कितना ही धन मौजूद हो परन्तु पढ़ाना बड़ा ही ज़रूरी है बल्कि सन्तानों की सहायता के लिये बनिसबत इस के कि धन इकट्ठा करे करोड़ गुणा बिहतर है कि सन्तान को विद्वान् और नेकचलन बनावे। जैसा किः—

यदि पुत्रः सुपुत्रः स्यात् व्यर्थोहि धनसंचयः॥
यदि पुत्रः कुपुत्रः स्यात् व्यर्थोहि धनसंचयः ॥

अगर पुत्र सपूत है तो धन का इकट्ठा करना व्यर्थ है और जो पुत्र कुपूत है तो भी धन का इकट्ठा करना व्यर्थ है अर्थात् यदि पुत्र सुपूत नेकचलन और विद्वान् होगा तो बहुत धन कमा लेगा फिर उस के लिये धन इकट्ठा करने की

क्या जरूरत, और जो पुत्र बदचलन और मूर्ख है तो भी उस के लिये धन का इकट्ठा करना व्यर्थ है। क्योंकि वह सब धन को उड़ा देगा। इस लिये दोनों हालतों में धन का इकट्ठा करना सन्तान के लिये लाभकारी नहीं है। बस सर्वोत्तम यही है कि सन्तान को योग्य सदाचारी और विद्वान् बनाना चाहिये। और जो लोग धन के भरोसे पर सन्तान को मूर्ख रखते हैं वे लोग उस मूर्ख सन्तान से खुद बड़े दुःखी होते हैं। जैसा किः—

अजातमृतमूर्खाणां मृताजातौ वरं सुतौ । तौ
किंचिच्छोकदौ पित्रोर्मूर्खस्त्वत्यन्तशोकदः ॥

दुःख देने वाली सन्तान तीन प्रकार की हैं, एक तो (अजात) जो पैदा ही नहीं हुई। दूसरी (मृत) जो कि पैदा हो कर मर गई। तीसरी (मूर्ख) जो कि मूर्ख रह गई। इन तीनों में पहले दो अर्थात् अजात और मृत ये तो अच्छे हैं, क्योंकि यह माता पिता को थोड़ा ही क्लेश पहुंचाते हैं। और तीसरा मूर्ख तो माता पिता को महादुःख देता है, मूर्ख माता पिता को सदा दुःखी रखता है, सर्वथा क्लेश देता है, उन की आत्मा को सताता है, उन की आज्ञा का पालन नहीं करता, धन को वृथा खोता है, बुरों की सोहबत में बैठता है, अपना समय व्यर्थ खोता है, उन की सेवा नहीं करता बल्कि उलटा उन को दुःखी करता, और जलाता रहता है। बुढ़ापे में मूर्ख सन्तान

की वजह से मनुष्य को क्या २ दुःख नहीं पहुंचता। इसीलिये सन्तान का न होना हज़ार दर्जे अच्छा है, परन्तु मूर्ख रहना कदापि अच्छा नहीं ।।

वरं गर्भस्रावो वरमृतुषु नैवाभिगमनम् ।
वरं जातः प्रेतो वरमपि च कन्यैव जनिता ॥
वरं वन्ध्या भार्य्या वरमपि च गर्भेषु वसतिः ।
न चाविद्वान् रूपद्रविणगुणयुक्तोपि तनयः ॥

गर्भ का गिर जाना अच्छा है, ऋतुकाल में स्त्री के पास न जाना अच्छा है, पुत्र का पैदा होते ही मर जाना अच्छा है, कन्या ही का उत्पन्न होना अच्छा, स्त्री बन्ध्या रहे सो अच्छी है, और गर्भ पेट के भीतर ही रहे सो अच्छा है, परन्तु मूर्ख पुत्र चाहो कैसा ही सुन्दर और धनाढ्य हो, वह अच्छा नहीं। बस जिस विद्या के बिना मनुष्य पशु के बराबर है, जिस विद्या से संसार और परलोक के दुर्लभ से दुर्लभ पदार्थ मिल जाते हैं, जिस विद्या से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष तक मनुष्य प्राप्त कर सक्ता है, उस विद्या का पढ़ना मनुष्य मात्र के लिये बड़ा ही ज़रूरी है, और वह विद्या ही प्रत्यक्ष कामधेनु है। यह ऐसी कामधेनु है कि इस को मनुष्य प्राप्त कर लेवे तो जो कुछ चाहे वह मिल सक्ता है। यह स्वर्ग का दूसरा पदार्थ है ।।

इसी प्रकार तीसरी वस्तु (पदार्थ) स्वर्ग में हंस हैं, हंस

क्या है? हंस एक प्रकार का पक्षी है। जिस में यह गुण है कि वह दूध और पानी को अलग २ कर देता है। अर्थात् दूध और पानी मिला कर रख दीजिये हंस के चोंच डालते ही दूध अलग हो जाता है और पानी अलग। यह हंस का स्वाभाविक गुण है, यह उस से कभी अलग हो ही नहीं सकता जैसा कि महाराज भर्तृहरि ने कहा है कि:-

अम्भोजिनीवननिवासविलासमेव।
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता ॥
नत्वस्य दुग्धजलभेदविधौ प्रसिद्धां।
वैदग्ध्यकीर्तिमपहर्तु मसौ समर्थः ॥

अर्थ-यदि ब्रह्मा भी हंस के ऊपर नाराज़ हो जावे तो उस के साथ क्या बुराई कर सक्ता है, यह कर सक्ता है जिस तालाब में हंस कमलों के साथ रहता है, उन कमलों को सुखा सक्ता है, या अधिक बुराई कर सक्ता है तो यह कर सक्ता है कि जिस तालाब में वह रहता है, उस तालाब को सुखा सक्ता है। परन्तु दूध और जल के अलग करने की जो अद्भुत शक्ति हंस में है, इस को तो ब्रह्मा भी दूर नहीं कर सक्ता है॥

इसी प्रकार अजब शक्ति रखने वाला यहां हंस क्या है और वह शक्ति क्या है सो मैं आप को बतलाता हूं।

हंस तो यहां मनुष्य जीव है और वह शक्ति सत्य और असत्य को दूर करने की है अर्थात् जैसे हंस

दूध और पानी को अलग करदेता है इसी प्रकार मनुष्य भी सत्य और असत्य को अलग २ करने की शक्ति अपने में धारण कर लेवे। यानी जो मामला या जो काम इस के सामने आवे उस में नज़र डालते ही सत्य को अलग और असत्य को अलग करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग कर देवे। ऐसा करने में दृढ़ होजावे तो एक २ मनुष्य हंस होसकता है। हंस ही नहीं बल्कि परमहंस तक होसकता है। क्यों कि " हन्तीति हंस. " जो परमेश्वर तक पहुंचादे उस का नाम परमहंस है अर्थात् इस में भी वही शक्ति है अर्थात् प्रकृति को अलग और परमात्मा को अलग करके दिखा दे, उस का नाम परम हंस है। और तीसरा उपदेश इस का यह है कि इस संसार रूपी समुद्र में जो कि काम, क्रोध, लोभ और मोह रूपी जल से भरा है इस के भीतर कछुए की तरह डूब मत जाओ बल्कि हंस की तरह ऊपर २ तैरो जैसे हंस तमाम शरीर को पानी के ऊपर रख कर तैरता है इसी प्रकार तुम भी संसार के ऊपर २ रहो अर्थात् काम, क्रोध, लोभ और मोह में लिप्त मत हो। बस इन तीन उपदेशों पर चलने से प्रत्येक मनुष्य हंस हो सकता है इस में सन्देह नहीं। बस यह तीसरी वस्तु स्वर्ग में है ॥

चौथा पदार्थ जो कि स्वर्ग में अमृत बताया गया था अर्थात् जिस के पीने से मनुष्य अमर हो जाता है वह अमृत यहां संसार में क्या है? वास्तव में अमृत जिस की

प्रशंसा है कि पीते ही मनुष्य अमर हो जाता है। ऐसी तो कोई झील वहां तिब्बत में है नहीं। हां, मानसरोवर झील का पानी जरूर बहुत मीठा है। और मनुष्य के स्वास्थ्य को बहुत अच्छा रखता है। बहुत कठिन २ बीमारी भी उस से जाती रहती हैं। इत्यादि अनेक गुण तो उस में हैं परन्तु मैं उस अमृत को यहीं संसार में बताता हूं जिस के पीने से मनुष्य वास्तव में अमर ही हो जाता है। वह अमृत यजुर्वेद के ४० अ० में बतलाया है। जैसा किः—

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयंꣳसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते॥

विद्या और अविद्या ये दो पदार्थ संसार में हैं इन में प्रथम मनुष्य अविद्या को जान कर दुःखों से बचता है संसार में आज कल जितनी विद्या प्रचलित हैं, अर्थात् साइंस फ़ासफी मंतक लाजिक केमेस्ट्री डाक्टरी वग़ैरहः ये सब वेदों में अविद्या (लाइलमी) के नाम से कही गई हैं और विद्या ब्रह्मविद्या को बतलाया गया है, "उत्तमा ब्रह्मविद्या स्यात्" ब्रह्मविद्या सर्वोत्तम है जिस के द्वारा परमात्मा का ज्ञान हो उसे विद्या कहते हैं। तो (अविद्यया) सांसारिक विद्याओं से तो सांसारिक दुःखों से बचता है और (विद्यया) ब्रह्म विद्या से (अमृतम्) अमृत अर्थात् मोक्ष को (अश्नुते) पाता है। बस ब्रह्म के द्वारा मोक्ष रूपी अमृत को पाकर मनुष्य अमर अर्थात् जन्म मरण के दुःख से रहित होता है। यही उपनिषदों में भी कहा है किः—

त्रयो धर्मस्य स्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति।
प्रथमस्तपएव द्वितीयो ब्रह्मचर्याचार्यकुलवासी
तृतीयोऽत्यन्तमात्मानमाचार्यकुले वासयन्सर्व
एतेपुण्यलोका भवन्तिब्रह्मसंस्थोऽमृतत्वमेति॥
छा० उ० १३ ख० १ मं०॥

(अ०) धर्म के (स्तम्भ) खम्भे तीन हैं एक यज्ञ दूसरा अध्ययन, तीसरा दान, इसी प्रकार प्रथम तो तप से सिद्ध होता है। दूसरा ब्रह्मचर्य को धारण कर के आचार्य के कुल में रह कर सिद्ध होता है। तीसरा अत्यन्ताचार्य कुल में रह कर सर्वस्व दान करने से सिद्ध होता है। ये सब जीव अत्यन्त पुण्यात्मा होकर ब्रह्म को पाते हैं और उस के द्वारा (अमृत) अर्थात् मोक्ष को पा जाते हैं॥

बस यही स्वर्ग का फल है। और वह स्वर्ग जिस के लिये बड़े २ मनुष्य क्षण में प्राण दे देते हैं, वह यही है। हे भारत वासियो! यदि तुम को सच्चे स्वर्ग की अभिलाषा है, यदि सच मुच स्वर्ग को प्राप्त किया चाहते हो, तो इन मतमतान्तरों की कही हुई स्वर्ग की झूंठी लालसाओं को छोड़ कर इस सच्चे उपदेश को ग्रहण करो जिस से सत्य स्वर्ग, सच्चा सुख प्राप्त हो। ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

ह० गिरिधारीलाल शास्त्री फर्रुखाबाद निवासी
पूर्व राजोपदेशक तथा मुख्योपदेशक आर्य
प्रतिनिधि सभा पञ्जाब विरचित स्वर्ग-
प्राप्ति समाप्त हुई॥